National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.multidisciplinaryjournal.org
ISSN: 2455-9040
Received: 01-10-2023, Accepted: 16-10-2023, Published: 01-11-2023
Volume 8, Issue 2, 2023, Page No. 173-176

स्वामी दयानन्द सरस्वती की शैक्षिक विचारधारा

कौशल कुमार
शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, ग्लोकल यूनिवर्सिटी सहारनपुर, डॉ० योगेश्वर प्रसाद शर्मा, शोध निर्देशक, शिक्षाशास्त्र विभाग, ग्लोकल यूनिवर्सिटी सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सरांश
स्वामी दयानंद सरस्वती वेद के तत्त्व द्रष्टा, वैदिक दर्शन के विद्वान, ईश्वरवादी होते हुए भी मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे। भारतीय शिक्षा को पुनः भारतीय बनाने का विशेष प्रयत्न किया। इन्होंने शिक्षा को ज्ञान और ज्ञान प्राप्ति के साधन, दो रूपों में स्वीकार किया है। मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है एवं कर्म भोग से छुटकारा पाना है। इन्होंने शिक्षा के पाँच उद्देश्य यथा शारीरिक विकास, मानसिक विकास, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति, समाज सुधार की शक्ति का विकास, सद् ज्ञान की प्राप्ति और सद् गुणों का विकास माना। उन्होंने बच्चे के गर्भ काल से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु तक की शिक्षा की पाठ्यचर्या निश्चित की है। उनके अनुसार स्वाध्याय, उपदेश, व्याख्यान और वाद–विवाद प्रमुख शिक्षण विधियाँ है।

मुलशब्द: स्वामी दयानन्द सरस्वती का शैक्षिक दर्शन एवं शैक्षिक चिंतन

जीवन–परिचय (1824–1883)

19वीं शताब्दी में गुजरात की भूमि ने दो महान् विभूतियों–स्वामी दयानन्द तथा महात्मा गाँधी को उत्पन्न करने का गौरव प्राप्त किया। स्वामी दयानन्द का जन्म गुजरात के मौरवी नामक एक छोटे से राज्य में एक सम्पन्न ब्राह्मण परिवार में सन् 1824 में हुआ था। उनके पिता का नाम कर्षणलाल तिवारी जो धार्मिक प्रवृत्ति के थे। स्वामी दयानन्द का बचपन का नाम मूलशंकर था। उनके पिता ने उनको पाँच वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत के ग्रन्थ कण्ठस्थ कराये और वैदिक ग्रन्थों का अभ्यास कराया। आठ वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। इस अवस्था में उन्होंने कठोर अनुशासन और धार्मिक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। उन्होंने शेष तीन वेदों के कुछ अंशों का भी अध्ययन किया। इसके उपरान्त, उन्होंने संस्कृत, व्याकरण, तर्कशास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने काशी जाकर संस्कृ त का अध्ययन करने की इच्छा प्रकट की। उनके पिता इससे सहमत थे। परन्तु उनकी माता का अगाध स्नेह उनकी इच्छा को पूर्ण करने में बाधक बना। अतः उनके पिता ने उनको एक पंडित से शिक्षा दिलवायी। परन्तु, शिक्षा का यह क्रम अधिक दिनों तक नहीं चल सका।

गौतम बुद्ध की भाँति जीवन की कुछ व्यावहारिक घटनाओं ने स्वामीजी को सत्य की खोज के लिए प्रेरित किया। इन घटनाओं में शिवरात्रि की घटना और उनकी बहिन तथा चचेरे दादा की मृत्यु उल्लेखनीय हैं। इन घटनाओं से क्षुब्ध होकर स्वामीजी ने 22 वर्ष की अवस्था में सन् 1846 में बिना किसी को बताये हुए त्याग कर दिया। गृहत्याग के उपरान्त, उनकी विभिन्न साधुओं से भेंट हुई परन्तु वे उन्हे संतुस्ट नहीं कर पाए गुजरात के शैला नामक स्थान पर उनकी एक ब्रह्मचारी से भेंट हुई। स्वामीजी ने उनसे दीक्षा लेकर अपना नाम शुद्ध चौतन्य रखा और संन्यास धारण किया, पर स्वामी विरजानन्द से साक्षात्कार करके उनको सन्तोष प्राप्त हुआ। स्वामी विरजानन्द से आशीर्वाद लेकर जिज्ञासा शान्त न हो सकी। भाग्यवश, सन् 1862 में उनको एक योग्य गुरु की प्राप्ति हुई। मथुरा और उनके आदेशों को शिरोधार्य करके. स्वामीजी ने बारह वर्ष तक विभिन्न लोगों से शास्त्रार्थ किय इसके पश्चात्, वे पुनः अपनी शंकाओं के समाधान के लिए स्वामी विरजानन्द के पास गये। अपनी शंकाओं का समाधान करके उन्होंने निःशंक होकर समाज और धर्म–सुधार के क्षेत्र में प्रवेश किया।

1875 ई. में स्वामीजी ने आर्यसमाज की स्थापना की और अपने धार्मिक और सामाजिक सुधारान्दोलन को एक निश्चित रूप प्रदान किया। इसके उपरान्त, उन्होंने स्थान–स्थान पर आर्य की शाखाओं की स्थापना की। उन्होंने अपने जीवनकाल में इस संस्था को एक विशाल वटवृक्ष का रूप प्रदान कर दिया था। इससे पूर्व ही, उन्होंने अपना रचना–कार्य प्रारम्भ कर दिया था। स्वामीजी ने वैष्णव मत के खण्डन के लिए एक पुस्तक लिखी। 1873 ई. में कुछ लोगों के अनुरोध से उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश की रचना की। वेदवाणी को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए, स्वामीजी वेदों का भाष्य प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने ग्रन्थों में धर्म, दर्शन, आचार, नीति आदि विषयों के प्रतिपादन किया है, जिनका अध्ययन करके उनकी दैवी प्रतिभा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

स्वामीजी पूर्ण योगी थे। अतः उन्हें अपने शरीर–त्याग का पूर्वाभास मिल गया था। उन्होंने मैडम ब्लावात्स्की (Madam Blavatosky) से बातचीत करते हुए कहा था कि मैं 1883 ई. तक के अन्त तक जीवित न रह सकूँगा। उनकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। उन्होंने 30 अक्टूबर, सन् 1883 ई. को दीपावली के दिन, अजमेर में अपने नाशवान शरीर को त्याग दिया।

जीवन–दर्शन

आर्यसमाज के संस्थापक, स्वामी दयानन्द सरस्वती यद्यपि एक महान् दार्शनिक थे फिर भी उनकी गणना दार्शनिकों में नहीं की जाती है। इसका प्रमुख कारण सम्भवतः यह है कि सामा धार्मिक सुधार के क्षेत्र में उनकी देन इतनी अधिक और महत्त्वपूर्ण है कि उनके दार्शनिक रूप में उनका सुधारक रूप अधिक प्रमुख जान पड़ता है। शंकराचार्य की भाँति स्वामी दयानन्द प्राचीन गौरव को पुनः प्रतिष्ठित किया। स्वामीजी जीवात्माष और ब्रह्म के गुणों को पृथक मानते थे। ब्रह्म सर्वशक्तिमान है। वह अपनी शक्ति से विश्व का सृजन, पोषण, विसर्जन तथा सृष्टि करता है। इसके विपरीत, जीवात्मा–सन्तान उत्पन्न करता है, उनका पालन–पोषण तथा अन्य कर्म करता है। ब्रह्म जीवात्मा को उसके कर्मों का फल प्रदान करता है और जीवात्मा उन्हें इस प्रकार जीवात्मा अपने कर्म करने में स्वतन्त्रश है, परन्तु कर्मों का फल भोगने में परतन्त्र

है। दयानन्ददृब्रह्म या ईश्वर को सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों में स्वीकार करते हैं वे इन दोनों में भेद नहीं करते हैं। इसलिए, उन्हें अद्वैतवादी कहा जाता है। स्वामीजी, संसार को मिथ्या या अवास्तविक नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि इन्दियों द्वारा वस्तु गृहणीय है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकती है। ब्रह्म या परमात्मा, सत्य है, तब संसार असत्य नहीं हो सकता है। जगत् का परम सूक्ष्म तत्व मिथ्या नहीं है।

जिस प्रकार जगत् का कारण परमात्मा, सत्य एवं अनादि है, उसी प्रकार जगत की स्थिति भी एवं अनादि है।

शिक्षा दर्शन

स्वामी दयानन्द वैदिक धर्म और संस्कृति के मूल स्तम्भ थे। उनको अपने समय के लोगों की दयनीय दशा को देखकर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने उनको इस दशा से मुक्त करने के लिए अपनी शिक्षा योजना को आश्रम धर्म पर आधारित किया। यद्यपि बालक की औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता है, तथापि अनौपचारिक रूप में वह गर्भावस्था में ही शुरू हो जाती है। अतः स्वामीजी ने माता–पिता के लिए सात्विक आहार को उचित बताया। साथ ही, उन्होंने माता–पिता के आचार–विचार की शुद्धता पर बल दिया। उन्होंने माता को महत्त्वपूर्ण शिक्षक माना है। उनका कहना है कि माता अपने बालक को पाँचवें वर्ष तक शिक्षा प्रदान करे और पिता आठवें वर्ष तक। इसके उपरान्त, बालक को विद्यालय या आचार्यकुल में भेज देना चाहिए। स्वामीजी ने प्लेटो के विचार को इन शब्दों में व्यक्त किया है–"वास्तव में जिस राज्य में पालन–पोषण और शिक्षा की उत्कृष्ट योजना का अनुसरण होता है, वहाँ के निवासी सद्–स्वभाव वाले होते हैं। सदशिक्षा के कारण उनकी और अधिक उन्नति होती है। उनमें सन्तानोत्पत्ति के गुणों की वृद्धि होती है। इस प्रकार उस राज्य की बहुमुखी ती ने प्रगति होती है।

शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त या आवश्यक तत्व

1. बालकों को 5 वर्ष और बालिकाओं को 8 वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ कर देना चाहिए।
2. बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा–संस्थाएँ, नगर के कोलाहल से दूर, किसी एकान्त स्थान में और एक–दूसरे से दो कोस दूर होनी चाहिए।
3. बालकों की शिक्षा–संस्थाओं में सब शिक्षक, कर्मचारी एवं सेवक–पुरुष और बालिकाओं की शिक्षा–संस्थाओं में स्त्रियाँ होनी चाहिए।
4. बालकों एवं बालिकाओं को बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
5. बालकों एवं बालिकाओं को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, क्योंकि इसका पालन किए बिना वे ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं।
6. बालकों एवं बालिकाओं में हवन, प्रार्थना, प्राणायाम आदि द्वारा कामप्रवृत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की क्षमता उत्पन्न की जानी चाहिए।
7. बालकों एवं बालिकाओं को अपने माता, पिता, शिक्षक, अतिथि, एवंबड़ों का आदर करने और छोटों के प्रति उचित प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा दी जानी चाहिए।
8. बालक एवं बालिकाओं में सत्य, ईमानदारी, सादा जीवन, आत्म–त्याग एवं आत्म–संतोष के आदर्शों का समावेश किया जाना चाहिए।
9. बालकों एवं बालिकाओं को कठोर एवं अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अभ्यस्त बनाकर, उनमें सहन–शक्ति के गुण का निर्माण किया जाना चाहिए।
10. सब वर्णों के पुरुषों एवं स्त्रियों को किसी भेदभाव के बिना शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार होना चाहिए।

शिक्षा का अर्थ

आधुनिक मान्यता की भाँति स्वामीजी ने शिक्षा को एक प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार, यह –प्रक्रिया गर्भावस्था से प्रारम्भ होती है और जीवन पर्यन्त चलती रहती है। उन्होंने शिक्षा को श्आन्तरिक शुद्धिश के रूप में माना है। यह शुद्धि आचरण, विचार तथा कर्म में प्रदर्शित होती है। एक स्थान पर स्वामीजी ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शिक्षा सत्य आचरण की योग्यता है। इस योग्यता की प्राप्ति के लिए शुभ गुणों को प्राप्त करना परमावश्यक है। इस सम्बन्ध में स्वयं स्वामी दयानन्द ने लिखा है–शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य– विद्या आदि शुभ गुणों को प्राप्त करे और अविद्या आदि दोषों को त्याग कर सदैव आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सके।

शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी दयानन्द के अनुसार, शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य –धर्माचरण है। उनका मत है कि प्रत्येक छात्र को वेदों में पारंगत होना चाहिए। साथ ही, वह खान–पान, आचार–विचार, व्यवहार कुशलता आदि में प्रशिक्षित होना चाहिए। स्वामी दयानन्द के अनुसार, शिक्षा के अन्य मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैरू–

1. वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान करना।
2. मनुष्य के विशुद्ध चरित्र का निर्माण करना।
3. मनुष्य में सांस्कृतिक वैयक्तिकता (Cultural Individuality) का विकास करना।
4. व्यक्ति को मानव बनाना।
5. मनुष्य में सत्य और असत्य में भेद करने की शक्ति का विकास करना।
6. मनुष्यों में राष्ट्रीय एकता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना। इस भावना के विकास के लिए स्वामीजी ने भ्रमण पर अधिक बल दिया है।

पाठ्यक्रम

स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को स्थान प्रदान किया, जिनका अध्ययन लगभग 20 वर्ष में समाप्त किया जा सकता है––

1. सर्वप्रथम सब बालकों एवं बालिकाओं को पाणिनि द्वारा लिखित ध्वनि–विज्ञान का ज्ञान कराया जाना चाहिए। माता–पिता एवं शिक्षकों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों एवं बालिकाओं को अक्षरों का शुद्ध उच्चारण करने में जिह्वा को उचित स्थान पर प्रयोग करना बतायें और उनसे शुद्ध उच्चारण के लिए प्रयास करायें।
2. ध्वनि–विज्ञान के पश्चात छात्रों को व्याकरण का बोध कराया जाना परिश्रम एवं बुद्धिमत्तापूर्ण पठन–पाठन से छात्र तीन वर्ष में वैयाकरण हो सकता है।
3. व्याकरण का अभ्यास कर लेने के पश्चात छात्रों को निघंटु एवं निरुक्त नामक अर्थ सहित छः से आठ मास तक पढ़ाया जाना चाहिए।
4. उसके पश्चात छात्रों को पिंगल द्वारा लिखित छन्दोग्रन्थ पढ़ाया जाना मास में पूर्ण कर लेना चाहिए।
5. तदुपरान्त, छात्रों को मनुस्मृति, बाल्मीकि रामायण, विदुरनीति एवं महाभारत के चुने हुए शिष्ट व्यक्ति बन जायँ। इन ग्रन्थों का अध्ययन एक वर्ष में समाप्त हो जाना चाहिए।
6. तदन्तर, छात्रों को निम्नलिखित छः शास्त्र, व्याख्या सहित पढ़ाए जाने चाहिए–पूर्वमीमांसा,'वैशेषिक, न्याय', 'सांख्य एवं वेदान्त। इन शास्त्रों के साथ–साथ, छात्रों को दस प्रमुख

उपनिषदों को भी पढ़ाया जाना चाहिए। इन सब ग्रन्थों का अध्ययन दो वर्ष में समाप्त कर लिया जाना चाहिए।

7. उपर्युक्त विषयों के बाद छात्रों को चारों वेदों सहित चारों ब्राह्मणों (ऐतरेय, शतपथ, शाम, गोपथ) को शब्द, स्वर, सम्बन्ध एवं क्रियासहित पढ़ाया जाना चाहिए। इन सबका अध्ययन छः वर्ष की अवधि में समाप्त हो जाना चाहिए।
8. वेदों एवं ब्राह्मणों का अध्ययन समाप्त करने के पश्चात, छात्रों को चारों उपवेदों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व वेद एवं अथर्ववेद) का अध्ययन करना चाहिए और इसे आठ वर्ष में समाप्त कर लेना चाहिए। इन उपवेदों का सम्बन्ध क्रमशः निम्नलिखित विज्ञानों से है–1- Medical Science 2- Science of Government 3- Science of Music and 4- Science and Practice of Mechanical Arts-
9. अन्त में छात्रों को निम्नलिखित विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए – ज्योतिषशास्त्र, बीजगणित, अंकगणित, भूगोल, ज्यामिति, भूगर्भ–शास्त्र एवं खगोल–विज्ञान। इनका अध्ययन दो वर्ष की अवधि में समाप्त हो जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द का कथन है–ष्इस पाठ्यक्रम को लगभग 20 वर्ष में समाप्त करने के बाद, छात्र को घर लौटना चाहिए, विवाह करना चाहिए और संसार में प्रवेश करना चाहिए।"

शिक्षण विधि

स्वामी दयानन्द ने शिक्षण की किसी मनोवैज्ञानिक विधि का प्रतिपादन नहीं किया है। यह सम्भव है कि शिक्षण–सम्बन्धी कोई बात मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुकूल आनुषंगिक रूपों में मिल जाय, पर उन्होंने इस दृष्टि से शिक्षण विधि के विषय में कोई बात नहीं कही है। उनके द्वारा प्रतिपादित की जाने वाली शिक्षण–विधि में अग्रलिखित की प्रधानता है–शब्दार्थ, व्युत्पत्ति, अनुवाद, व्याख्यान, प्रवचन और व्याकरण की दृष्टि से शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध हैं।

शिक्षा का माध्यम

स्वामी दयानन्द ने मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया है। उनका कहना है कि बालक की प्रारम्भिक शिक्षा–मातृभाषा के माध्यम से होनी चाहिए। किन्तु, वे बालक के लिए एक ही भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं मानते हैं अतः स्वामी दयानन्द का मत है–जब बालक पाँच वर्ष की अवस्था प्राप्त कर ले, तब उसे संस्कृ त की वर्णमाला का ज्ञान दिया जाना चाहिए। साथ ही, उसे एक विदेशी भाषा का भी ज्ञान दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार, स्वामीजी का मत है कि बालक को प्रारम्भ से ही मातृभाषा के साथ–साथ संस्कृत और एक विदेशी भाषा का ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए। यह मत व्यक्त करके, उन्होंने बालक द्वारा तीन भाषाओं का अध्ययन किया जाना आवश्यक मानकर, त्रिभाषा–सूत्र का प्रतिपादन किया। यह सूत्र उनके बहुत समय के पश्चात् भारतीय शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तुत किया गया।

अनुशासन

अनुशासन से स्वामीजी का अभिप्राय, नैतिक अनुशासन से है। नैतिक अनुशासन के लिए, उन्होंने छात्रों एवं छात्राओं दोनों द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाना अनिवार्य बताया है। इस व्रत का पालन करने के लिए, ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी को जिन बातों से बचना चाहिए, उनका वर्णन–स्वामी दयानन्द ने इस प्रकार किया है–ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गंध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्दन, बिना निमित्त उपस्थेन्द्रियों का स्पर्श, आँखों में अंजन, जूते और छाते का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच, गान, बाजा बजाना, जुआ खेलना, निन्दा, मिथ्या भाषण और परहानि आदि कुकर्मों को छोड़ दें। वे सर्वत्र एकाकी सोवें, वीर्य स्खलित कभी न करें और जो कामना से वीर्य स्खलित कर दें, तो जानो कि उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश कर दिया है।

अध्ययन–काल व गुरु–शिष्य कर्तव्य

स्वामीजी का मत है कि ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन करते हुए, विद्या प्राप्त करने की न्यूनतम अवधि 20 वर्ष है। यदि कोई व्यक्ति आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, तो वह कर सकता है। स्वामीजी के अनुसार, बालक का प्रथम उपनयन संस्कार घर पर होना चाहिए और उसे इस समय गायत्री मन्त्र का उपदेश देना चाहिए। बालक का दूसरा उपनयन संस्कार आचार्यकुल में प्रविष्ट होने के समय होना चाहिए। इस समय उसे गायत्री मन्त्र का उपदेश, अर्थसहित देना चाहिए। इसके उपरान्त उसे संध्योपासना तथा उसकी विधियों को सिखाया जाना चाहिए। इसके पश्चात बालक को देवयज्ञ (हवन) की क्रिया सिखानी चाहिए। छात्र इन क्रियाओं को प्रतिदिन नियम समय पर करे। स्वामीजी ने शिक्षक तथा शिष्य दोनों को तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णित नियमों का पालन करने के लिए कहा हैं।

शिक्षकों व छात्रों के गुण

स्वामीजी का अडिग विश्वास है कि अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं को विशिष्ट गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। इन गुणों के अभाव में वे अपने छात्रों को शिष्ट, सुशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय एवं पूर्ण विद्वान नहीं बना सकते हैं। अपने इस विश्वास के कारण स्वामी दयानन्द ने शिक्षक अथवा आचार्य में अग्रलिखित गुणों का होना अनिवार्य माना है–आचार्य वह है, जो शब्दों, उनके अर्थों एवं उनके सम्बन्धों को जानता है, जो मिथ्याभिमान एवं कपट से मुक्त है, जो सब छात्रों को असीम प्रेम से ज्ञान प्रदान करता है, और जो उदार एवं पक्षपातरहित है।

शिक्षकों के समान छात्रों में भी कुछ विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है, तभी वे ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। इस दृष्टि से, स्वामी दयानन्द ने छात्रों में निम्नांकित अनिवार्य माना है–छात्रों को सदैव जितेन्द्रिय, शान्त, अपने शिक्षकों एवं सहपाठियों के प्रति प्रेमपूर्ण, विचारशील एवं अध्ययनशील होना चाहिए।

शिक्षा–संस्थाएँ

स्वामी दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों से प्रेरित होकर, भारत के विभिन्न भागों में बालकों एवं बालिकाओं के लिए पृथक् गुरुकुलों की स्थापना की गई है यथा–

(अ) बालकों के लिए–बालकों के लिए प्रमुख गुरुकुल निम्नलिखित हैं–

(1) गुरुकुल, हरिद्वारय (2) गुरुकुल महाविद्यालय, कांगड़ीय और (3) गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर।

(ब) बालिकाओं के लिए–बालिकाओं के लिए निम्नांकित तीन गुरुकुल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–(1) कन्या गुरुकुल, देहरादूनय (2) कन्या–गुरुकुल, सासनी (अलीगढ़ जनपद) और (3) आर्य कन्या–महाविद्यालय, बड़ौदा। इन गुरुकुलों में स्वामी दयानन्द के शैक्षिक सिद्धान्तों के अनुसार, बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षा प्रदान की जाती है। उनको साधारण जीवन व्यतीत करना पड़ता है और शिक्षा–काल में ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन करना पड़ता है। उनके लिए एक निश्चित कार्यक्रम निर्धारित है। उनके अनुसार, उन्हें प्रातःकाल उठना, व्यायाम करना और होम एवं उपासना में भाग लेना पड़ता है। में गुरुकुल, सावास शिक्षा–संस्थाएँ हैं। उनमें सह–शिक्षा का प्रचलन नहीं है। शिक्षा का माध्यम, हिन्दी है। पाठ्यक्रम में हिन्दी एवं अंग्रेजी के साथ–साथ प्रायः सभी आधुनिक शास्त्रों एवं विज्ञानों को स्थान दिया गया है। संस्कृत साहित्य एवं आर्य–संस्कृति के अध्ययन पर बल दिया जाता है। छात्रों एवं छात्राओं के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के प्रति विशेष ध्यान दिया जाता है।

उपसंहार

भारत की जिन महान् विभूतियों ने अपने स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा इस देश की शिक्षा के स्वरूप को रूपान्तरित करने एवं शिक्षा प्रणाली को नवीन दिशा देने का प्रयास किया है, उनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक होने के कारण उन्होंने समकालीन शिक्षा–पद्धति की तीक्ष्ण आलोचना की। उनका कथन था कि यह पद्धति, पाश्चात्य संस्कृति से सराबोर होने के कारण भारतीय संस्कृति एवं भारतीय धर्म को समूल नष्ट करने का प्रयास कर रही थी। अंग्रेजी शिक्षा के उपासक बनकर इस देश के निवासी अपनी प्राचीन परम्पराओं से दूर होते जा रहे थे। इस शिक्षा में चरित्र–निर्माण का कोई स्थान न होने के कारण भारतीयों के चरित्र का निरन्तर पतन हो रहा था। स्वामीजी ने घोषित किया कि यदि देश की पतनोन्मुख होने से रक्षा की जाती है, तो भारतीय शिक्षा को पुनः प्राचीन संस्कृति एवं आदर्शों पर आधारित करना पड़ेगा। अपने उपरिअंकित विचारों के कारण स्वामीजी ने भारत के लिए एक नवीन शिक्षा योजना का निर्माण किया। इस योजना का आदर्श है–राष्ट्र एवं मानव का उत्थान। इसीलिए, यह योजना व्यावसायिक धारणाओं से परे है और राष्ट्र एवं मानव के सम्पूर्ण जीवन की पूर्णता, व्यापकता एवं विशालता पर आधारित है। इस योजना द्वारा ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा का सूत्रपात करने का प्रयास किया। गया है, जो भारतीय संस्कृति, आदर्शों, आवश्यकताओं एवं वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल हो। इस विषय में स्वयं स्वामी दयानन्द ने यह विचार लिपिबद्ध किया है–स्वस्थ मस्तिष्क के सब व्यक्ति इस बात से सहमत होंगे कि शिक्षा का अधिकतम लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब उसे राष्ट्रीय चरित्र एवं स्वरूप में ढाल दिया जाय। वस्तुतः शिक्षा के स्वरूप को इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि वह उन प्राकृतिक बन्धनों को, जो भारतीयों को एक सूत्र में बाँधते हैं, और अधिक दृढ़ बनाये एवं उनमें समान राष्ट्रीयता का विकास करे। शिक्षा को अन्धविश्वासों, आर्थिक विषमताओं, धार्मिक संकीर्णताओं एवं जाति–पाँति के बन्धनों से पृथक् रखकर, सब वर्णों के पुरुषों एवं स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार प्रदान किया है। इस योजना के कारण ही उनको वैदिक शिक्षा–पद्धति, शिक्षा–प्रसार एवं जीवनोन्नति के प्रवर्तक एवं मार्गदर्शन के वरासन पर प्रतिष्ठित किया जाता है। अतः भारतीय शिक्षा को उनके योगदान एवं उनके शिक्षादर्शन का मूल्यांकन डॉ. मणि के निम्नांकित शब्दों में उपस्थित करना पूर्णतया युक्तियुक्त प्रतीत होता है–हमारे देश की शिक्षा को स्वामी दयानन्द का योगदान वास्तव में अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण है, हालांकि उनका कार्य क्षेत्र मुख्यतः आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सामाजिक था। उन्होंने अनिवार्य रूप से शिक्षा के माध्यम द्वारा सामाजिक सुधार का समर्थन किया। उन्होंने किसी भेदभाव के बिना पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों के हित के लिए जनसाधारण की शिक्षा का अनुमोदन किया।

संदर्भ ग्रंथ

1. बिहारी, प्रो0 रमन लाल एवं सुनीता पलोड़ –शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. गोयल डॉव राजकुमार और अग्रवाल डॉव मीरा –शिक्षा दर्शन और आत्म–विकास की अवधरणाएं,आर. लाल बुक डिपो मेरठ।
3. सक्सेना, एन. आर. स्वरूप,2009 शिक्षा दर्शन एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री,आर. लाल. बुक डिपो मेरठ।
4. पचौरी प्रो0 गिरीश –समकालीन भारत और शिक्षा, आर. लाल बुक डिपो।
5. माथुर डॉ0 एस0 एस0–शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार,श्री विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा।
6. पाठक, पीव डीव और त्यागी जी.एस. डी.–शिक्षा के सामान्य सिद्धांत, विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा।
7. बिहारी, प्रो0 रमन लाल एवं तोमर गजेन्द्र सिंह –विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक,आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
8. तिवारी उमेश (एन. डी.)–प्रगतिशील भारत मे शिक्षा, आगरा,ज्योति प्रकाशन ।
9. डॉ० गुरसरनदास त्यागी, डॉ० विजय कुमार नन्द–उदीयमान भारत में शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2.
10. Sharma YP, veer Singh A. The Role of Emotional Attachment of Teachers in the Development of Self-confidence, Learning Habits and Social Adjustment of Children in the Primary Schools. International Journal of Science and Research (Online),2014:3(10):889-893.
11. Sharm YP. A study on the achievement motivation of b. ed. trainees in the colleges of education in Moradabad district (UP) India, 2019.
12. Sharma YP. Inclusive Education: Trends and Challenges in India, 2019.
13. Sharma YP. A study on Teachers' Attitude towards Information and Communication Technology [ICT]. Venkateshwara International Journal of Multidisciplinary Research (ISSN 2348- 7079), 2018, 7.
14. Sharma YP. Maadhyamik star ke chhaatron kee shaikshik ruchi shaikshik santushti aur shaikshik upalabdhi ka unake vyaktitv antarmukhee bahirmukhee aayaamon ke sandarbh mein Adhyayan, 2018.
15. Sharma MYP. The emergence of private universities in India: the challanges and the prospects